महाकवि बाण

सुबन्धु ने जिस कृत्रिम गद्य-शैली को पल्लवित किया, उसका प्रौढ़ एवं स्निग्ध-रूप हमें बाण की गद्य-शैली में उपलब्ध होता है। सुबन्धु के ही मार्ग के पथिक होने पर भी बाण में कुछ ऐसी निजी विशेषताएँ हैं, जो उन्हें मजे से कालिदास, माघ या भवभूति के साथ रख देती हैं। यद्यपि कालिदास जैसी उदात्त भाव-तरलता बाण में भी नहीं मिलती, तथा सरल कोमल शैली के द्वारा उच्च कोटि के प्रभाव की सृष्टि करने में कालिदास समस्त संस्कृत साहित्य में बेजोड़ हैं, तथापि माघ और भवभूति के समान सानुप्रासिक समासान्त-पदावली का जितना सुन्दर निर्वाह बाण कर पाते हैं, उतना कोई अन्य गद्य-लेखक नहीं कर पाता। इस दृष्टि से बाण माघ और भवभूति से भी बढ़ जाते हैं, क्योंकि बाण के लम्बे लम्बे वाक्यों के विस्तीर्ण फलक पर एक-सी रेखाएँ, एक-सा रंग, एक-सी कलादक्षता का परिचय देना और कठिन हो जाता है, जो पद्य के छोटे से 'केन्वस' पर मजे से निभाया जा सकता है। माघ तथा भवभूति की भाँति ही बाण में तीव्र पर्यवेक्षण शक्ति है। प्रकृति का जो ब्यौरेवार वर्णन हमें बाण में मिलता है, वैसा माघ तथा भवभूति में उसी पैमाने पर दिखाई नहीं देता, यह दूसरी बात है कि यह प्रकृतिवर्णन वहीं तक सुन्दरता का निर्वाह कर पाता है, जहाँ तक कवि प्राकृतिक दृश्यों का बिम्बग्रहण कराता जाता है, ज्यों ही वह श्लेष या विरोधाभास के चक्कर में फंस जाता है, वर्णन अपनी रमणीयता खो बैठता है। बाण की शैली में कविता की अतीव उदात्तभूमि के दर्शन होते हैं, पर दुःख यह है कि कहीं-कहीं गई बीती शताब्दी क्रीडावाली सुबन्धु की दयनीय परिणति भी दिखाई देती है, जो बाण की 'कादम्बरी' को कहीं-कहीं तीखा बना देती है और काव्य-चषक का पान करते रसिक का गला कुछ-कुछ जल उठता है, अन्यथा उसमें माधुर्य का वह अबस्र स्रोत है, जो भोक्ता को 'समब' कर देता है।

बाण, संस्कृत साहित्य का अकेला ऐसा कवि है, जिसके जीवन के विषय में हमें पर्याप्त जानकारी मिली है। बाण ने स्वयं हर्षचरित के प्रथम तीन उच्छ्-

वासों तथा कादम्बरी की प्रस्तावना के पद्यों में अपना परिचय दिया है। ये वत्स गोत्र के ब्राह्मण थे तथा इनके एक पूर्वज का नाम 'कुबेर' था। कुबेर कर्मकाण्डी तथा श्रुतिशास्त्रसम्पन्न ब्राह्मण थे।[1] इनकी विद्वत्ता का परिचय देते हुए बाण ने बताया है कि अनेक छात्र इनके यहाँ यजुर्वेद तथा सामवेद का पाठ किया करते थे और पाठ करते समय वे स्थान-स्थान पर गलत उच्चारण करने के कारण घर में पाले हुए पिंजरे में बैठे हुए शुक-सारिकाओं के द्वारा टोक दिये जाते थे।[2] इन्हीं कुबेर के चार पुत्र थे, अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत। पाशुपत के पुत्र अर्थपति थे तथा अर्थपति के ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें एक पुत्र चित्रभानु थे। बाण इन्हीं चित्रभानु के पुत्र थे तथा उनकी माता का नाम राजदेवी था।[3] बाण की माता का देहान्त बचपन में ही हो गया था, पिता की मृत्यु भी उसी समय हो गई, जब बाण केवल १४ वर्ष के ही थे। पिता की मृत्यु के बाद बाण स्वतन्त्र प्रकृति के हो गये और उच्छृङ्खल बनकर आवारा जीवन बिताने लगे। कुछ ऐसे ही आवारा लोगों के साथ उनकी दोस्ती हो गई, जिसमें भाषा कवि ईशान विद्वान् वारबाण तथा वासबाण, प्राकृतकवि वायुविकार आदि हैं।[4] बाण के इन मित्रों में सभी तरह के लोग थे, कुछ विद्वान् थे, तो कुछ उठाउगीर, कुछ नर्तक या नट थे, तो अन्य जादूगर। इन तरह-तरह के दोस्तों के साथ बाण ने अनेक देशों का पर्यटन किया। बाद में घर लौटकर उन्होंने विद्याध्ययन किया और अपनी कुलोचित स्थिति को प्राप्त किया। एक दिन बाण के पास महाराज हर्षवर्धन के भाई कृष्ण का पत्र आया और पता चला कि कृष्ण ने बाण को बुलाया है। बाण दूसरे दिन घर से रवाना हो गये। राजद्वार पहुँच कर वे सभा में गये। हर्ष ने उन्हें देखकर पूछा 'क्या यही बाण हैं?' और फिर अपने पीछे बैठे हुए मालवराजपुत्र से कहा 'यह बड़ा धूर्त (विट) है' (महानयं विटः)।

---

१. कादम्बरी पद्य १०—११

२. जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यत्र शङ्किताः॥ (काद० पद्य १२)

३. अलभत च चित्रभानुः तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्।
(हर्षचरित पृ० १२६)

४. हर्षचरित के पृ० १०७-१०९ पर इन मित्रों की लम्बी सूची दी गई है।

बाण ने इसे सुनकर कहा 'स्वामिन्, संसार में लोगों का स्वभाव विचित्र होता है, इसलिए सज्जनों को सदा यथार्थदर्शी होना चाहिए। यदि मैं सचमुच दोषी हूँ, तो महाराज मुझे ऐसा कह सकते हैं। बिना किसी कारण मुझे आवारा समझना ठीक नहीं। मैं ब्राह्मण हूँ, मैंने सांगवेदों का अध्ययन किया है, अन्य शास्त्रों का भी यथाशक्ति अवलोकन किया है। फिर महाराज ने मुझ में 'विटत्व' कैसे पाया? महाराज स्वयं समय पर मेरी वास्तविकता जान जायेंगे।' हर्ष ने इसका उत्तर केवल यही दिया कि उसने ऐसा सुना था। बाण को राजसभा में कोई आदर न मिला। वे बड़े दुःखी हुए, पर बाद में हर्ष की राजसभा में उन्हें समुचित आदर प्राप्त हो गया। धीरे-धीरे वे हर्ष के विश्वासपात्र तथा स्नेहभाजन बन गये।[1]

इस प्रकार बाण का समय सातवीं शती का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। बाण के अतिरिक्त अन्य कई कवि हर्ष की राजसभा में विद्यमान थे। सूर्यशतक या मयूरशतक के रचयिता मयूर कवि तथा 'भक्तामरस्तोत्र' नामक जैन स्तोत्र काव्य के कर्ता दिवाकर मानतुङ्ग भी बाण के साथ हर्ष की राजसभा में थे। एक किंवदन्ती के अनुसार तो बाण मयूर के जामाता थे और सूर्यशतक तथा चण्डीशतक की रचना के सम्बन्ध में एक घटना सुनी जाती है। वह यह है कि एक बार मयूर अपने जामाता से मिलने के लिए प्रातःकाल उसके यहाँ गये। बाण की पत्नी रात भर 'मान' किये बैठी थी और प्रातःकाल के समय भी वह प्रसन्न न हुई। बाण उसे मनाने के लिए एक पद्य बना रहे थे जिसके तीन चरण तो बन गये थे, चौथा चरण न बन पाया। मयूर ने ये तीन चरण सुने और चट से चौथा चरण बना दिया। पूरा पद्य यों हैं :—

गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो
स्तनप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्॥

'रात बीत चुकी है, क्षीणकान्ति चन्द्रमा जैसे मन्द होता जा रहा है, यह दीपक भी जैसे नींद के वश होकर तन्द्रिल हो रहा है। रमणियों का मान तभी तक बना रहता है, जब तक उनकी मनौती नहीं की जाती। मैं तुम्हें प्रणाम

१. हर्षचरित द्वितीय उच्छ्वास।

कर-कर मना रहा हूँ, पर फिर भी तुम क्रोध नहीं छोड़ती।...... ऐसा प्रतीत होता है, हे चण्डी, तुम्हारा हृदय भी इसलिए कठोर हो गया है कि वह कठोर स्तनों से सम्बद्ध है।' मयूर के मुँह से चतुर्थ पंक्ति को सुनकर बाण क्रुद्ध हो गये, उन्होंने मयूर को यह शाप दे दिया कि वह कोढ़ी हो जाय। मयूर ने भी बाण को शाप दे दिया। कहा जाता है कि मयूर ने शाप की निवृत्ति के लिए सूर्य की स्तुति में सूर्यशतक की रचना की, और सूर्य की कृपा से उसका कोढ दूर हो गया। बाण ने भी अपने शाप को मिटाने के लिए चण्डी की स्तुति में चण्डीशतक की रचना की।

बाण की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं : हर्षचरित नामक आख्यायिका कादम्बरी-कथा तथा चण्डीशतक।[१] क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्यविचारचर्चा में पद्यबद्ध कादम्बरी का एक पद्य उद्धृत किया है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि बाण ने कादम्बरी कथा की पद्यात्मक रचना भी की थी, किन्तु यह भी संभव है कि बाण की कादम्बरी के आधार पर किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की हो। बाण के नाम के साथ पार्वतीपरिणय नामक नाटक को भी जोड़ने की चेष्टा की जाती है, जो बाण की रचना न होकर वामनभट्ट बाण की रचना है, जिनका समय १७वीं शताब्दी माना जाता है। इसके अतिरिक्त नलचम्पू की टीका में चण्डपाल ने बाण के एक और नाटक का भी संकेत किया है—मुकुटताडितक। बाण का यह नाटक उपलब्ध नहीं है। बाण के उपलब्ध तीन ग्रन्थों में बाण की ख्याति का आधार हर्षचरित तथा कादम्बरी हैं। कादम्बरी तो बाण की उत्कृष्ट कलात्मक कृति है। कादम्बरी की रचना में बाण को गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा सुबन्धु की वासवदत्ता से प्रेरणा मिली है और इन्हें पीछे छोड़ना बाण का लक्ष्य रहा है।[२]

---

१. चण्डीशतक में बाण ने दुर्गा की स्तुति में सौ स्रग्धरा छन्दों की रचना की है। इसकी शैली गाढबन्ध का परिचय देती है। इसका एक नमूना यह है :—

विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे,
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी॥ (चण्डीशतक)

२. द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठयया महामनोमोहमलीमसान्धया।
अलब्धवैदग्धविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा॥
(कादम्बरी पूर्वभाग पद्य २०)

हर्षचरित आख्यायिका है, कादम्बरी कथा। आख्यायिका तथा कथा का भेद बताते समय भामह ने बताया है कि आख्यायिका की कथावस्तु वास्तविक होती है तथा उसका वक्ता स्वयं नायक होता है। कथा का वर्णन सरस गद्य में किया जाता है। आख्यायिका कई उच्छ्वासों में विभक्त की जाती है तथा प्रत्येक उच्छ्वास के आदि या अन्त में भावी घटनाओं के सूचक पद्य होते हैं, जो वक्त्र या अपरवक्त्र छन्द में निबद्ध होते हैं। आख्यायिका में कवि अपनी कल्पना का समावेश कर सकता है तथा कथावस्तु का विषय कन्याहरण, युद्ध, वियोग तथा अन्त में नायक की विजय से संबद्ध होता है। आख्यायिका संस्कृत में निबद्ध की जाती है। कथा में कविकल्पित निजंधरी कथावस्तु होती है, इसका वक्ता नायक से इतर कोई व्यक्ति होता है। कथा में उच्छ्वास-विभाग नहीं होता, न वक्त्र या अपरवक्त्र पद्यों की विनियोजना ही होती है। कथा संस्कृत या अपभ्रंश किसी में भी निबद्ध की जा सकती है।[1] इससे यह स्पष्ट है कि भामह के पूर्व ही आख्यायिकाएँ तथा कथाएँ लिखी गई थीं और वे बाण की रचनाओं से कुछ भिन्न शैली की रही होंगी। भामह का आख्यायिका तथा कथा का वर्गीकरण संभवतः बाद के कवियों और आलंकारिकों ने पूरी तरह नहीं माना था और दण्डी ने अपने काव्यादर्श में आख्यायिका तथा कथा का कोई विशेष भेद नहीं माना। दण्डी के मतानुसार कहानी का कहने वाला कोई भी हो, नायक हो या अन्य कोई व्यक्ति, वह उच्छ्वासों में विभक्त हो या न हो, उसमें वक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों की योजना हुई हो या न हुई हो, इससे कोई मौलिक अन्तर नहीं आ जाता। वस्तुतः आख्यायिका तथा कथा दोनों एक ही गद्यशैली के अन्तर्गत आते हैं, वे अलग-अलग प्रकार नहीं हैं।[2] दण्डी के इस

---

१. भामह—काव्यालंकार १.२५–२८।

२. अपादः पादसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदो द्वौ तयोराख्यायिका किल॥
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः।
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदलक्षणम्॥
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासं चापि भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसंगेन कथास्वपि॥

मत से यह संकेत मिलता है कि दण्डी के समय तक आख्यायिका तथा कथा का भामह वाला भेद मिट चुका था तथा कवि इन रूढ़ नियमों की पाबन्दी नहीं करते थे। कथा का लक्षण रुद्रट ने भी काव्यालंकार में दिया है। उसके मतानुसार कथा के आरम्भ में पद्य में देवता और गुरु की वन्दना हो, तब कवि अपने कुल का संक्षिप्त परिचय दे, तब सरस सानुप्रास लघ्वक्षर गद्य के द्वारा कथा का वर्णन करे। सबसे पहले एक कथान्तर का उपन्यास करे, जो प्रधान कथा को प्रस्तुत करे। इस कथा का प्रधान प्रतिपाद्य कन्याप्राप्ति होना चाहिए। इस प्रकार संस्कृत में गद्य के द्वारा तथा अन्य भाषाओं में पद्य के द्वारा कथा कही जानी चाहिए।[1]

भामह दण्डी तथा रुद्रट के मतों के देखने पर हम एक निष्कर्ष पर मजे से पहुँच सकते हैं कि आख्यायिका तथा कथा का खास भेद एक ही है और वह उनकी कथावस्तु की प्रकृति से संबद्ध है। आख्यायिका एक तथ्यपूर्ण (भूतार्थ) कथा को लेकर चलती है, जिसमें ऐतिहासिक, अर्धैतिहासिक कथा या आत्मकथा पाई जाती है, जब कि कथा कल्पित या निजंधरी कथा वस्तु को आधार बनाकर चलती है। यह दूसरी बात है कि कथा की वर्णन शैली में कवि उत्तम पुरुष की पद्धति का प्रयोग भी कर सकता है, पर उसका मूल कल्पित कथा होती है। कथा की वास्तविक प्रकृति उसके कल्पित इतिवृत्त में ही है। रुद्रट ने अपनी परिभाषा संभवतः बाण की दो भिन्न-भिन्न प्रकार की

आर्यादिवत्प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लंभादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः॥
तत्कथाख्यायिकेत्येव जातिः संज्ञाद्वयांकिता।
अत्रैवाविर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥ (काव्यादर्श १. २३-२८)

१. श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरुन्नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात्स्वं च कर्तृतया॥
सानुप्रासेन ततो लघ्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन्॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक्।
लघु तावत् सन्धानं प्रक्रान्तकथावताराय॥
कन्यालाभफलं वा सम्यक् विन्यस्य सकलश्रृङ्गारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन॥
(रुद्रटः काव्यालंकार १६.२०-२३)

कृतियों के आधार पर निबद्ध की है। रुद्रट ने बाण की ही कृतियों की विशेषताएँ देखकर तत्तत् गद्यकाव्य के भेद के लक्षण उपन्यस्त कर दिये हैं। रुद्रट ने आख्यायिका के लिए यह आवश्यक नहीं माना है कि उसका वक्ता स्वयं नायक ही हो (जैसा कि भामह ने माना है), साथ ही प्रथम उच्छ्वास से इतर अन्य उच्छ्वासों के आरम्भ में दो आर्या छन्दों की योजना आवश्यक मानी है। इन आर्या छन्दों में समस्त उच्छ्वास की कथा की व्यंजना कराई गई हो, साथ ही प्रथम उच्छ्वास में पद्यबद्ध प्रस्तावना हो। रुद्रट के ये सभी लक्षण बाण के हर्षचरित में देखे जा सकते हैं। इसी तरह रुद्रट की कथा सम्बन्धी परिभाषा कादम्बरी के आधार पर निबद्ध की गई प्रतीत होती है। हर्षचरित की कथा ऐतिहासिक है, जिसमें कुछ कल्पना का भी पुट है, यह उच्छ्वासों में विभक्त है तथा इसका वक्ता स्वयं बाण है। कादम्बरी की कथा कल्पित है, उसका विभाजन किन्हीं उच्छ्वासादि में नहीं किया गया है तथा इसका प्रतिपाद्य कन्याप्राप्ति है; कथा को प्रस्तुत करने के लिए आरम्भ में कथान्तर की योजना भी पाई जाती है।

हर्षचरित

हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त आख्यायिका है, जिसमें कवि ने स्थाण्वीश्वर महाराज हर्षवर्धन के जीवन से सम्बद्ध कथा निबद्ध की है। कुछ विद्वानों ने हर्षचरित को ऐतिहासिक काव्य मान लिया है। यद्यपि हर्ष के ऐतिहासिक व्यक्तित्व से सम्बद्ध होने के कारण इस कृति को ऐतिहासिक मान लिया जाता है, तथापि बाण ने जिस शैली में कथा कही है, उसे देखने से ऐसा पता चलता है कि इसमें तथ्य तथा कल्पना—फैक्ट और फिक्शन—दोनों का संमिश्रण पाया जाता है। साथ ही हर्षचरित में भी कई लोक कथात्मक रूढियों (फोक-टेल मोटिफ़) का प्रयोग किया गया है। आरम्भ में दधीचि तथा सरस्वती के प्रणय की गाथा, तृतीय उच्छ्वास में पुष्पभूति की कथा तथा अष्टम उच्छ्वास वाली मन्दाकिनी एकावली की कहानी इन रूढियों में से कुछ हैं। ऐतिहासिक काव्यों में इस तरह की अलौकिक काल्पनिक कथाओं और रूढियों का समावेश ही उसे कल्पना का क्षेत्र बनाकर अर्धैतिहासिक रूप दे देता है। बाद के संस्कृत चरितकाव्यों में इस प्रकार की काल्पनिक रूढियाँ बहुत प्रयुक्त होने लगी थीं। दूसरी वस्तु जो हर्षचरित को प्रमुखतः काव्य बना देती है, वह

उसकी वर्णन शैली है। कवि का प्रधान ध्येय कल्पना के रङ्गीन ताने-बाने के द्वारा हर्ष का जीवनवृत्त बुनना भर है, यही कारण है, उसके जीवन से संबद्ध कथा-सूत्र पर उसका इतना ध्यान नहीं जान पड़ता और जब बाण की कल्पना बहुत लम्बी उड़ान ले चुकती है, तो वह हर्षचरित को एक अनिश्चित स्थान पर ही अधूरा छोड़ देता है। कादम्बरी को अधूरा छोड़ देने में बाण की असामयिक मृत्यु ही कारण है, किन्तु हर्षचरित में केवल यही कारण जान पड़ता है कि कवि की कल्पनावृत्ति तृप्त हो चुकी थी।

हर्षचरित का प्रथम उच्छ्वास २३ पद्यों की प्रस्तावना से आरम्भ होता है जिसमें बाण ने अपने पूर्व के श्रेष्ठ कवियों व गद्य लेखकों की प्रशंसा की है, इस प्रस्तावना में महाभारत के रचयिता व्यास; वासवदत्ता के रचयिता (सम्भवतः सुबन्धु) तथा हरिचन्द्र के गद्य प्रबन्ध का श्रद्धा के साथ स्मरण किया है। इनके अतिरिक्त शातवाहन के प्राकृत पद्य-समूह, प्रवरसेन के सेतुबन्धु, भास के नाटक तथा कालिदास की 'मधुरसान्द्र' कविता और गुणाढ्य की बृहत्कथा का आदर से नाम लिया गया है। इसी सम्बन्ध में बाण ने यह भी बताया है कि उदीच्य लोग काव्य में श्लेष अलंकार को अधिक पसन्द करते हैं, पाश्चात्य लोग अर्थ पर ध्यान देते हैं, दाक्षिणात्य उत्प्रेक्षा को पसन्द करते हैं और गौड देश के कलाकार अक्षराडम्बर में ही काव्य की रमणीयता मानते हैं।[1] पर बाण स्वयं इन सबके समूह को काव्य का गुण मानते हैं, वे यह चाहते हैं कि काव्य में नवीन अर्थ, सुसंस्कृत स्वभावोक्ति (जाति), सरल (अक्लिष्ट) श्लेष तथा रसप्रवणता हो, साथ ही विकटाक्षरबन्ध भी हो। इन सभी गुणों का एक साथ काव्य में समावेश अत्यधिक दुर्लभ है।[2] ऐसा जान पड़ता है कि बाण की शैली का आदर्श यही रहा है और इस आदर्श का स्फुट रूप हमें कादम्बरी की शैली में परिलक्षित होता है। सुन्दर अक्षरों की घटना से युक्त आख्यायिका की तुलना बाण ने एक स्थान पर उस सुखमय ललित शय्या से की है, जिसमें सोने के सोपान मार्ग बने हों। दूसरे स्थान पर कादम्बरी की ही भाँति कथा की तुलना नववधू से की गई है, जो किसी तरह सलज्ज पदन्यास से शय्या की ओर

---

१. श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः॥ हर्षचरितः (१.८)

२. हर्षचरित (१.९)।

अग्रसर होती है।[1] डॉ० कीथ के मतानुसार बाण ने निम्न पद्य में अपनी कृति की रचना का उद्देश्य भी स्पष्ट किया है :—

> आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि।
> जिह्वान्तः कृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते (१. १९)

'अपने हृदय में स्थित उस महान् राजा के उत्साहों का केवल स्मरण करने पर ही मेरी जिह्वा इतनी रुक जाती है कि जैसे वे इसे कवित्व में प्रवर्तित नहीं होने दे रहे हैं।' इस पद्य के द्वारा बाण ने एक ओर हर्ष के अपार गुणों की प्रशंसा की है, दूसरी ओर इस बात का सङ्केत किया है कि उसकी जिह्वा में उन गुणों का वर्णन करने की शक्ति नहीं।

प्रथम उच्छ्वास में बाण ने सर्वप्रथम अपने वंश का परिचय दिया है। इसमें बाण ने वात्स्यायन गोत्र के ब्राह्मणों की उत्पत्ति का सङ्केत करते समय दुर्वासा के द्वारा सरस्वती को शाप दिये जाने की कथा निबद्ध की है। शाप के कारण सरस्वती मर्त्यलोक में अवतार लेती है तथा सरस्वती के साथ सावित्री भी पृथ्वी में आती है। वे दोनों एक नद के किनारे लतामण्डप में बैठी थीं कि उधर से एक अठारह वर्ष का युवक घोड़े पर सवार होकर निकला, उसके साथ कई सैनिक थे। उसने सरस्वती को देखा तथा वे दोनों एक दूसरे के प्रति मोहित हो गये। यह कुमार च्यवन ऋषि का पुत्र दधीचि था। सरस्वती तथा दधीचि की प्रणय गाथा को प्रथम उच्छ्वास में बड़े विस्तार से वर्णित किया गया है तथा सावित्री और दधीचि के मित्र विकुक्षि के प्रयत्न से दोनों का मिलन हो जाता है। सरस्वती की वियोगक्लान्त दशा का वर्णन करने में बाण की लेखनी ने कलात्मकता का पूरा परिचय दिया है।[2] इसके बाद दोनों मिलते हैं तथा सरस्वती गर्भवती होकर सारस्वत नामक पुत्र को उत्पन्न करती है। सारस्वत का लालन-पालन एक ऋषिपत्नी अक्षमाला करती है और उसका पुत्र वत्स भी

---

१. हर्षचरित (१. २१—२३)

२. स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना च आकर्णाकृष्टकार्मुकेण मनसि निर्दयमताडयत मकरकेतुना। प्रतिबुद्धाया मदनशरताडितायाश्च तस्या वार्तामिव उपलब्धुमरतिः आजगाम। तथा हि, ततः प्रभृति कुसुमधूलिधवलिताभिर्वनलताभिः अताडितापि वेदनामधत्त। मन्दमन्दमारुतविधुतैः कुसुमरजोभिः अदूषितलोचनाऽपि अश्रुजलं मुमोच। हंसपक्षतालवृन्तचर्याविधुतैः शोणशीकरैरसिक्ताऽपि आर्द्रतामगात्।

हर्षचरित (प्रथम उच्छ्वास)

सारस्वत के साथ ही खेलता-कूदता, लिखता-पढ़ता बड़ा होता है। इसी के वंश में बाण के पूर्वज कुबेर पैदा होते हैं, जिनके कई पीढी बाद चित्रभानु पैदा होते हैं और उनके बाण नामक पुत्र उत्पन्न होता है। इसी सम्बन्ध में बाण ने अपने आवारापन का भी सङ्केत किया है।

द्वितीय उच्छ्वास में बाण को कृष्ण का पत्र मिलता है और वह राजा के दर्शन के लिए अपने गाँव से रवाना होता है। द्वितीय उच्छ्वास के आरम्भ में ग्रीष्म की प्रचण्डता का वर्णन[1] तथा बाद में राजद्वार का वर्णन[2] अत्यधिक अलंकृत और कलात्मक है। बाण की समासान्तपदावली का एक रूप यहाँ देखा जा सकता है। बाण को पहले तो राजसभा में कोई आदर नहीं मिला, किन्तु बाद में वे राजा के विश्वासपात्र बन जाते हैं। तृतीय उच्छ्वास में यह वर्णन है कि बाण कुछ दिनों बाद अपने गाँव लौटते हैं, और उसके भाई उन्हें हर्ष का जीवनचरित्र कहने को कहते हैं। बाण हर्ष का चरित्र वर्णित करते हैं। इस उच्छ्वास से स्थाण्वीश्वर का विस्तार से अलंकृत वर्णन है,[3] तथा उसके राजाओं के कुल का वर्णन करते हुए एक काल्पनिक अर्धैतिहासिक राजा पुष्पभूति का सङ्केत किया गया है, जो हर्ष का पूर्वज था। यहीं पुष्पभूति तथा भैरवाचार्य नामक शैव योगी का सुन्दर वर्णन पाया जाता है।

हर्षचरित की वास्तविक कथा चतुर्थ उच्छ्वास से आरम्भ होती है। प्रभाकरवर्धन का वर्णन करते समय बाण ने उसके शौर्य और पराक्रम से संबद्ध घटनाओं को नहीं लिया है। आरम्भ में राजमहिषी यशोवती के स्वप्न का वर्णन है, जिसमें वह सूर्यमण्डल से निकल कर आते दो कुमारों तथा एक कुमारी को उदर में प्रविष्ट होते देखती है। बाद में यशोवती के प्रथम प्रसव

---

१. हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास पृ० ११६-१२८ (कलकत्ता संस्करण)

२. हर्षचरित द्वितीय उच्छ्वास पृ० १५२ १६३.

३. तत्र··· पद्मासनस्थितब्रह्मर्षिध्यानाधीयमानसकलकलाकुशलप्रशमः प्रथमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य, कलकलमुखरमहावाहिनीशतसङ्कुलो विक्षेप इव उत्तरकुरूणाम्, ईश्वरमार्गणसन्तापानभिज्ञसकलजनो विजिगीषुरिव त्रिपुरस्य, सुधारससिक्तधवलगृहपङ्क्तिपाण्डुरः प्रतिनिधिरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमत्तमत्तकाशिनीभूषणरवभरितभुवनो नामाभिहार इव कुबेरनगरस्य स्थाण्वीश्वराख्यो जनविशेषः।

(हर्षचरित तृतीय उच्छ्वास पृ० १६७.१६८)

का संकेत मिलता है। राज्यवर्धन के जन्म के बाद हर्ष तथा राज्यश्री के जन्म का वर्णन तथा मौखरि गृहवर्मा के साथ राज्यश्री के विवाह की घटना निबद्ध की गई। इसी उच्छ्वास में राज्यवर्धन के हूण विजय के लिए प्रस्थान का वर्णन है, हर्ष भी उसके साथ जाता है, किन्तु वह बीच में मृगया के लिए रुक जाता है। इसी बीच हर्ष को अपने पिता की बीमारी की सूचना मिलती है। वह राजधानी को लौटता है, पर उस समय पिता की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। इधर प्रभाकरवर्धन की मरणासन्न अवस्था को देखकर देवी यशोवती पहले से ही नदी के तीर पर चिता में सती होना चाहती है, हर्ष उसे रोकना चाहता है, पर वह पति के वियोग के पूर्व ही इस संसार से बिदा हो जाना चाहती है। हर्ष किसी तरह इस मातृवियोग को सहता है। उधर प्रभाकरवर्धन भी पञ्चत्व को प्राप्त हो जाता है। षष्ठ उच्छ्वास में राज्यवर्धन हूणों पर विजय प्राप्त कर वापस लौट जाता है, वह राज्यभार हर्ष को सौंपना चाहता है, पर इसी बीच यह समाचार मिलता है कि मालवराज ने गृहवर्मा को मार डाला है तथा राज्यश्री को बन्दी बना लिया है। राज्यवर्धन भण्डि को दश हजार घोड़ों को तैयार करने की आज्ञा देकर मालवराज पर चढ़ाई करने को प्रस्थान करता है। हर्ष घर पर ही रहता है। इसी बीच यह खबर मिलती है कि राज्यवर्धन ने मालवराज पर तो विजय प्राप्त कर ली थी, किन्तु लौटते समय वह गौडाधिप के द्वारा मारा गया। हर्ष उसी समय युद्ध घोषणा करना चाहता है, किन्तु सेनापति सिंहनाद के कहने पर वह कुछ समय के लिए रुक जाता है।

सप्तम उच्छ्वास में हर्ष के सेनाप्रयाण का विस्तार से वर्णन है।[1] प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा का एक दूत हर्ष के पास आकर उसे दिव्य

---

१. अथ प्रस्थिते राजनिकलकलत्रस्तदिङ्नासूत्कारख इव इतस्ततस्ततस्तारतारतरः तूर्याणां प्रतिध्वनिः आशातटेषु। दिग्गजेभ्यः प्रकुपितानां त्रिप्रस्नुतनां करिणां मदप्रस्रवण-वीथीभिः अलिकुलकालिभिः कालिन्दीवेणिकासहस्राणि इव सस्यन्दिरे। सिन्दूररेणुराशिभिः अरुणायमानाबिम्बे रवौ अस्तमयसमयं शशङ्किरे शकुनयः। करिणां षट्पदकोलाहलमांसलैः कर्णतालनिःस्वनैः तिरोदधिरे दुन्दुभिध्वनयः।······अश्वीयश्वासनिक्षिप्तैः शिश्चिन्दे सिन्धु-वारदामशुचिभिः निरन्तरं अन्तरिक्षं फेनपिण्डैः। पिण्डीभूततगरस्तबकपाण्डुराणि पपुरिव परस्परसंघट्टनष्टाष्टदिशं दिवसं उच्चचामीकरदण्डानि आतपत्रवनानि। रजोरजनीनिमीलितो मुकुटमणिशिलावलीबालातपेन विचकास वासरः॥ हर्षचरित (सप्तम उच्छ्वास) पृ० ७४०-४१

आतपत्र भेंट करता है तथा इसी सम्बन्ध में छत्र की दैवी उत्पत्ति की काल्पनिक कथा पाई जाती है कि वह छत्र वरुण का था, जिसे नरक नामक राजा ने वरुण से छीन लिया था। वही छत्र वंश-परम्परा से भगदत्त को प्राप्त हुआ और उसके कई पीढ़ी बाद प्राग्ज्योतिषेश्वर को प्राप्त हुआ है। प्राग्ज्योतिष के राजा ने मित्रता के प्रतीक रूप में उसे हर्ष को भेंट किया है। अष्टम उच्छ्वास में हर्ष विन्ध्याटवी पहुँचता है तथा निषाद के साथ राज्यश्री को ढूँढने के लिए वन में निकल पड़ता है। वे दोनों ऋषि दिवाकरमित्र के आश्रम में पहुँचते हैं। दिवाकर मित्र के तपोबल का वर्णन करने में बाण ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है। दिवाकरमित्र के आश्रम-वर्णन की तुलना हम कादम्बरी के जाबालि ऋषि के आश्रम-वर्णन से कर सकते हैं।[1] हर्ष दिवाकरमित्र से राज्यश्री के विषय में पूछता है। इसी बीच एक भिक्षु आकर किसी स्त्री की चिता में जलने की तैयारी की सूचना देता है। हर्ष दौड़ता है और ठीक समय पर जाकर राज्यश्री को चिता में जलने से बचा लेता है। राज्यश्री दुःखी जीवन का अन्त कर देना चाहती है, पर दिवाकरमित्र उसे समझा-बुझा देते हैं और राज्यश्री को लेकर हर्ष लौट आता है।

जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं, हर्षचरित को 'ऐतिहासिक काव्य' कहना कुछ ठीक नहीं जान पड़ता। हर्षचरित की प्रकृति मूलतः गद्य काव्य की है तथा केवल ऐतिहासिक कथावस्तु के चुनने के ही कारण यह ऐतिहासिक इसलिए नहीं माना जा सकता कि हर्षचरित की शैली, आत्मा तथा 'टेकनीक' सभी एक 'रोमैण्टिक' कहानी का रूप लेकर आती है।

कादम्बरी

कादम्बरी की कथा पूर्णतः कल्पित और निजंधरी है तथा इसका प्रतिपाद्य कन्यालाभ है। इसे 'कथा' कोटि के गद्य काव्य में माना जायगा, जिसका संकेत हम कर चुके हैं। हर्षचरित की ही भाँति कादम्बरी भी अधूरी ही छोड़ दी गई थी। मृत्यु के कारण बाण इसे पूरा न कर पाये और उनके पुत्र भूषण (अथवा पुलिंद) ने इसके उत्तरार्ध को पूर्ण किया। कादम्बरी इसीलिए दो भागों में विभक्त है, पूर्वार्ध बाण की कृति है, उत्तरार्ध उनके पुत्र की उत्तरार्ध में भी अलग से पद्यमय प्रस्तावना है। अवशिष्ट भाग का निर्वाह

---

१. दे० हर्षचरित (अष्टम उच्छ्वास) पृ० ८९४–६१, कादम्बरी, पृ० ८३–८९,

करने में बाण किस शैली का आश्रय लेते इसका कोई संकेत हमें नहीं मिलता। कुछ विद्वानों ने तो उत्तरार्ध के उपसंहार को भी दोषपूर्ण माना है तथा कुछ लोगों का यह भी सन्देह है कि क्या बाण स्वयं शूद्रक को चन्द्रापीड़ का इस जन्म का अवतरण मानना चाहते थे। पर जहाँ तक बाण की कथा के उपसंहार का प्रश्न है, यह संदेह निराधार जान पड़ता है। बाण ने पहले से ही कथा की रूपरेखा अवश्य बना ली होगी और तीसरे जन्म में पुराने प्रेमियों का मिलाप करा देना उनका ही प्रतिपाद्य रहा होगा। स्वयं बाण-पुत्र ने इसका संकेत किया है।[१] जहाँ तक वर्णन शैली का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि बाण के पुत्र ने कथा को कुछ तेजी से समेट लिया है, संभवतः बाण प्रतिपाद्य तक मन्द गति से बढ़ते, और पता नहीं कितने वर्णनों, कितनी कल्पनाओं, कितनी सानुप्रासिक समासान्त वाक्यततियों के बाद कथा कहीं अपने लक्ष्य की की ओर मुड़ती। जहाँ तक अलंकृत शैली का प्रश्न है, बाण का पुत्र अपने पिता के कई गुणों का प्रदर्शन करता है, किन्तु बाण की कई शाब्दी कलाबाजियाँ भी वहाँ दिखाई पड़ती हैं, जिनमें पुत्र ने अपनी कलाबाजियों को और जोड़ दिया है। उत्तरार्ध के आरम्भ में उसने कादम्बरी को पूरा कराने का केवल एकमात्र कारण यह बताया है कि कादम्बरी को अधूरी देखकर सज्जन व्यक्ति दुःखी हो रहे थे और पिता उसे अधूरी ही छोड़ गये थे, अतः सज्जनों को प्रसन्न करने के लिए इस कथा को पूरा किया गया है, इसमें बाणतनय का कोई 'कवित्वदर्प' कारण नहीं।

> **याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।**
> **दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात्॥**

बाणतनय के पास पिता की भाँति कल्पना का अपार भाण्डार, अनुप्रासों की लड़ी पर लड़ी, वर्ण्य विषय की हर बारीकी को देखने की पर्यवेक्षणशक्ति नहीं दिखाई पड़ती, बाण की शैली के साथ उत्तरभाग की शैली की तुलना करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है। इतना होते हुए भी कई स्थानों पर

---

१. बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि। वप्त्रैव यान्युदितकर्मबलात्कृतानि॥
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पुष्टिं। तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि॥
(कादम्बरी उत्तरभाग ८)

बाण-तनय की शैली में कलात्मकता का चरम परिपाक दिखाई देता है।[१]

कादम्बरी की कथा में चन्द्रापीड तथा पुण्डरीक दोनों नायकों के तीन-तीन जन्म की कहानियाँ है। बाण की स्वयं की रचना को देखते हुए पूर्व भाग इस कथा के पूर्णतः विकसित होते-होते ही समाप्त हो जाता है। आरम्भ में विदिशा के राजा शूद्रक का विस्तार से वर्णन है, जिसके दरबार में एक चाण्डालकुमारी मनुष्य के समान बोलनेवाले शुक को लेकर आती है, और वैशम्पायन नामक शुक के मुख से कादम्बरी की कथा कहलाई गई है। तोते के मुँह से कथा के कुछ अंश को कहलवाने की कथानक रूढि का प्रयोग हमें वासवदत्ता में मिलता है, तथा बाद में भी लोककथाओं में पाया जाता है।[२] कादम्बरी में कथा में कथा की योजना करने की रूढ़ि का प्रयोग मिलता है। शुक की कथा के अन्तर्गत जाबालि के द्वारा कही गई चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन की कथा आती है और उसके बीच फिर महाश्वेता के द्वारा कही गई महाश्वेता तथा पुण्डरीक की प्रणयगाथा है। महाश्वेता से मिलने पर चन्द्रापीड कादम्बरी का दर्शन करता है, और कादम्बरी तथा चन्द्रापीड दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं।

---

१. बाणतनय की शैली के उत्कृष्ट स्थलों में एक स्थल यह है :—

स तु मामुपसृत्यान्यदृष्टिरदृष्टपूर्वोऽपि प्रत्यभिजानन्निव, असंस्तुतोऽपि चिरचरिचित इव, असम्भावितोऽप्युपारूढ़प्रौढप्रणय इव, अस्निग्धोऽपि परवानिव, प्रेम्णा शून्योऽपि किमप्यनुस्मरन्निव, दुःखिताकारोऽपि सुखायमान इव, तूष्णीमपि स्थितः प्रार्थयमान इव, अपृष्टोप्यावेदयन्निवात्मोयमेवावस्थाम्, अभिनन्दन्निव, अनुशोचन्निव, हृष्यन्निव, क्रुध्यन्निव, विषीदन्निव, बिभ्यदिव, अभिभवन्निव, हृत इव, अकांक्षन्निव, अनुस्मरन्निव विस्मृतम्, अनिमिषेण निश्चलस्तब्धपक्ष्मणान्तर्बाष्पपूराद्रेण कर्णान्त-चुम्बिना विकसितेनेवामुकुलिततारकेण चक्षुषा मत्त इवाविष्ट इव विमुक्त इव पिबन्नि-वाकर्षन्निवान्तविशन्निव च सुचिरमालोक्याब्रवीत्। (कादम्बरी-उत्तरभाग पृ० ६१०--११)

२. अपभ्रंश में ऐसे कई बोलते पक्षी पाये जाते हैं, जो कथा के कुछ अंश के वक्ता के रूप में सामने आते हैं। मुनि कनकामर के करकण्डुचरिउ (कर-कण्ड चरित) में तो एक तोता ठीक बाण के वैशम्यापन की ही तरह दिखाई देता है। वैशम्पायन की तरह ही ऋषियों के आश्रम में भी रहा है तथा उसने शास्त्रोंका अध्ययन किया है। बाण के शुक की भाँति वह भी राजसभा में आकर चरण उठा कर राजा को आशीर्वाद देता हैं।

(दे० कनकामर—करकण्डचरित परिच्छेद आठ पृ० ७४)

कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का प्रणय, जो कथा का वास्तविक केन्द्र है, कादम्बरी कथा में बहुत बाद उपन्यस्त किया जाता है, तथा इसके पहले कि उनका प्रणय सफल हो, चन्द्रापीड को उज्जयिनी लौट आना पड़ता है। ताम्बूलकरंक-वाहिनी पत्रलेखा चन्द्रापीड के पास आकर कादम्बरी का सन्देश देती है और यहीं बाण का पूर्वभाग समाप्त हो जाता है। उत्तरभाग में चन्द्रपीड कादम्बरी से मिलने रवाना होता है, वह महाश्वेता के पास पहुंचता है। महाश्वेता से उसे अपने मित्र वैशम्पायन की विपत्ति का पता चलता है। वैशम्पायन महाश्वेता को देखकर मोहित हो जाता है तथा एकान्त में प्रणय का प्रस्ताव रखता है। तपस्विनी महाश्वेता उसे शाप दे देती है और वह तोता बन जाता है। इधर मित्र की विपत्ति को सुनकर चन्द्रापीड भी देहत्याग कर देता है। कादम्बरी आकर विलाप करती है। चन्द्रापीड का शरीर मृत्यु के बाद भी निर्विकार बना रहता है। तारापीड और देवी विलासवती पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर अत्यधिक उद्विग्न होते हैं। जाबालि की कथा यहीं समाप्त हो जाती है। बाद में शुक (पुण्डरीक) को ढूंढ़ता हुआ उसका मित्र कपिञ्जल जाबालि के आश्रम में आता है, तथा अपने मित्र को इस दशा में देखकर बड़ा दुःखी होता है। एक दिन शुक जाबालि के आश्रम से उड़ निकलता है और किसी चाण्डाल के द्वारा पकड़ा जाता है, वह उसे अपनी पुत्री को दे देता है। यह चाण्डाल कन्या ही उसे शूद्रक के पास लेकर आती है। शुक स्वयं इसके बाद का वृत्तान्त नहीं जानता तथा वह उसे यहाँ क्यों लाई है, इसे भी नहीं जानता। तब चाण्डाल कन्या अपना वास्तविक परिचय देते हुए बताती है कि वह पुण्डरीक की माता लक्ष्मी है, तथा पुण्डरीक ही उस जन्म का वैशम्पायन तथा इस जन्म का शुक है। शूद्रक स्वयं पिछले जन्म में चन्द्रापीड था और उसके पूर्व स्वयं भगवान् चन्द्रमा जिसे मदनज्वालादग्ध पुण्डरीक ने शाप दे दिया था। इतना कहकर लक्ष्मी अन्तर्धान हो जाती है। लक्ष्मी के जाने पर शूद्रक और शुक भी अपना यह शरीर छोड़ देते हैं। चन्द्रापीड का शव पुनर्जीवित हो जाता है, आकाश से पुण्डरीक उतरता हुआ दिखाई देता है। महाश्वेता तथा पुण्डरीक और कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का मिलन होता है, और वे कभी चन्द्रलोक में तथा कभी मर्त्यलोक में विहार करते विविध सुखों का उपभोग करते हैं।[1]

---

१. "न केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह, कादम्बरी महाश्वेतया सह, महाश्वेता पु

बाण को अपनी कथा की कल्पना बृहत्कथा के राजा सुमनस् (या सुमानस) की कहानी से मिली होगी, तथा उसी की भाँति शाप और पुनर्जन्म की कथानक रूढ़ियों का प्रयोग कादम्बरी में किया गया है। किन्तु बृहत्कथा की कथा को ज्यों का त्यों नहीं लिया गया है तथा दोनों कथाओं का उपसंहार भिन्न-भिन्न प्रकार का है। कथा के अन्दर दूसरी कथा की योजना सम्भवतः बृहत्कथा की ही पद्धति है। इसी पद्धति का प्रयोग पञ्चतन्त्र की नीतिकथाओं में भी मिलता है। कथासरित्सागर में भी इस कथा-शृंखला की शैली पाई जाती है, जहाँ क के द्वारा ख की कथा, ख के द्वारा ग की कथा तथा ग के द्वारा घ की कथा सुनाई जाती है और एक कथा दूसरी कथा में इतनी घुल-मिल जाती है कि पाठक कभी-कभी तो खास कहानी को बिलकुल भूल जाता है। पञ्चतंत्र में इसी पद्धति में थोड़ा हेर-फेर पाया जाता है, जहाँ कहानियों के पात्र स्वयं कथा या अवान्तर कथा कहते हैं। दशकुमारचरित में दण्डी ने कहानी कहने की शैली में एक और नई योजना की है। यहाँ प्रत्येक राजकुमार अपने द्वारा अनुभूत घटनाओं का वर्णन उत्तम पुरुष की शैली में करता है। वेतालपञ्चविंशति में अनेक कहानियों को एक ही प्रतिपाद्य से सम्बद्ध कर दिया गया है। लोक-कथाओं में कई कहानियों में उत्तम पुरुष वाली शैली का प्रयोग करना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि अन्य पात्र उसे उस वैयक्तिक अनुभव के रंग में नहीं रँग सकता। कादम्बरी में ही शुक तथा महाश्वेता की कहानियाँ उत्तम पुरुष की प्रणाली में कही गई हैं। जाबालि की कहानी में अन्य पुरुष की शैली का प्रयोग मिलता है, पर जाबालि का त्रिकालदर्शी अलौकिक चरित्र, जो अपनी दिव्यदृष्टि से समस्त घटनाओं से परिचित है, तथा प्रत्येक घटना को करतलामलकवत् वर्णित कर सकता है, उनमें वैयक्तिक अनुभव की तरलता का संचार कर देता है।

बाण की कादम्बरी कथा में लोककथा की कई रूढियों का प्रयोग पाया जाता है; मनुष्य की तरह बोलता हुआ सर्वशास्त्र-विशारद शुक, त्रिकालदर्शी महात्मा जाबालि, मर्त्यलोक से दूर हिमालय के स्वर्गीय वातावरण में रहने वाले किन्नर, गन्धर्व और अप्सराएँ, शाप के कारण आकृतिपरिवर्तन, पुनर्जन्म

पुण्डरीकेण सह, पुण्डरीकोऽपि चन्द्रमसा सह, परस्परावियोगेन सर्व एव सर्वकालं सुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन् ॥ (कादम्बरी उत्तरभाग पृ० ७११)

की धारणा, तथा पूर्वजन्म के जातिस्मरण से सम्बद्ध कई 'लोककथा रूढ़ियों' (फोक-टेल मोटिफ) की बाण ने विनियोजना की है। बाण के पात्र मर्त्यलोक में चलते-फिरते दण्डी के यथार्थवादी पात्र नहीं हैं, बल्कि चन्द्रलोक, गन्धर्व-लोक तथा मर्त्यलोक में निर्बाध गति से संचार करने वाले आदर्शपात्र हैं। कादम्बरी की कथा भी शाकुन्तल की भाँति 'पृथ्वी तथा स्वर्ग का सम्मिश्रण' कही जा सकती है। बाण को कथा तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण की अपेक्षा अधिक दिलचस्पी कथा कहने के ढङ्ग में है, पर इसका अर्थ नहीं कि बाण के चरित्र सर्वथा जीवनशून्य हैं। कादम्बरी के चरित्र भले ही आदर्शवादी बाण के हाथ की कठपुतली हैं, पर बाण ने उनका संचालन इतनी कुशलता से किया है कि उनमें चेतना संक्रान्त हो गई है। शुकनास का बुद्धिमान तथा स्वामिभक्त चरित्र, वैशम्पायन की सच्ची मित्रता और महाश्वेता के आदर्श प्रणयी चरित्र की रेखाओं को बाण की तूलिका ने स्पष्टतः अङ्कित किया है। पर बाण का मन तो नायक-नायिका की प्रणय-दशाओं, प्रकृति के विविध चित्रों और काव्य-मय वातावरण की सृष्टि करने में विशेष रमता है।

कादम्बरी में बाण की कथा का खास आधार पुनर्जन्म की मान्यता है तथा इस कहानी में दोनों नायकों (चन्द्रमा और पुण्डरीक) को तीन-तीन जन्म का भोग भोगना पड़ता है। नायिकाएँ (महाश्वेता और कादम्बरी) अपने इसी जन्म में रहती हैं, उन्हें अनेक जन्मों का भोग नहीं भोगना पड़ता। इसके साथ ही कवि बाण ने जन्म-जन्मान्तर संगत प्रेम-भावना का संकेत किया है। इस दृष्टि से बाण का प्रेमसम्बन्धी दृष्टिकोण ठीक वही है, जिसे कालिदास ने अपने शाकुन्तल में 'जन्मान्तरसौहृद भाव' के रूप में माना है।[१] बाणतनय ने भी कादम्बरी के उत्तरभाग में महाश्वेता के सौन्दर्य के प्रति वैशम्पायन के आकर्षण में इस मान्यता का संकेत किया है, जिसका एक अंश हम बाणतनय की शैली के सम्बन्ध में पादटिप्पणी में उद्धृत कर चुके हैं। पुनर्जन्म में विश्वास न करनेवालों को बाण की कादम्बरी की कथा गपोड़ा दिखाई पड़े,

---

१. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुकोभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ (शाकुन्तल, पंचम अङ्क)

भारतीय संस्कृति में पला व्यक्ति इस प्रकार की कहानियों में रस लेता है। मानव जीवन के कोमल प्रणय-चित्र का जो सरस वातावरण कादम्बरी में मिलता है, वह निःसन्देह बाण के सफल कलाकृतित्व का परिचायक है। प्रेम के रोमानी वातावरण के अतिरिक्त, मृत्यु के करुण तथा हृदय द्रावक दृश्य और प्रिय की मृत्यु के बाद भी उससे पुनर्मिलन की आशा, उन चित्रों को और अधिक गम्भीर बना देते हैं। महाश्वेता पुण्डरीक के पुनर्मिलन की आशा में अच्छोद सरोवर के पास तपस्या करती है और कादम्बरी चन्द्रापीड की मृत्यु के बाद भी उसके पुनर्मिलन की आशा को पाकर आत्महत्या नहीं करती। इतना ही नहीं, बाण ने तो चन्द्रमा तथा पुण्डरीक जैसे दिव्य पात्रों को भी पुनर्जन्म की धारणा के कारण मर्त्यलोक में लाकर क्रमशः चन्द्रापीड और शूद्र तथा वैशम्पायन और शुक की योनि में चित्रित किया है।

बाण की काव्य-प्रतिभा

बाण का प्रणय चित्रण अत्यधिक उदात्त तथा रमणीय हैं। कादम्बरी और चन्द्रापीड के प्रथम मिलन के वर्णन में—राजकुमार को देखने के बाद कादम्बरी की उत्कण्ठापूर्ण भावनाओं तथा सात्त्विक भावों के वर्णन में—बाण ने कादम्बरी के अन्तस् में स्थित भावों को वाणी देने का सफल प्रयत्न किया है और इस चित्र में हमें प्रथम रागोद्‌बोध से युक्त युवक चन्द्रापीड और अभिनवयौवना कुमारी कादम्बरी के हृदयों की रङ्गीन धूपछाहीं झाँकी देखने को मिलती है :—

'अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। उरुकम्प एव गतिं रुरोध, नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमपयशो लेभे। निःश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार चामरानिलो निमित्ततां ययौ। अन्तःप्रविष्टचन्द्रापीडस्पर्शलोभेनेव निपपात हृदये हस्तः, स एव करः स्तनावरणव्याजो बभूव। आनन्द एवाश्रुजलमपातयत्, चलितकर्णावतंसकुसुमरजो व्याजमासीत्। लज्जैव वक्तुं न ददौ, मुखकमलपरिमलागतालिवृन्दं द्वारतामगात्। मदनशरप्रथमप्रहारवेदनेव सीत्कारमकरोत्, कुसुमप्रकरकेतकीकण्टकक्षतिः साधारणतामवाप। वेपथुरेव करतलमकम्पयत्, निवेदनोद्यतप्रतीहारनिवारण कपटमभूत्। तदा च कादम्बरीं विशतो मन्मथस्यापि मन्मथ इवाभूद् द्वितीयः, तया सह यो विवेश चन्द्रापीडहृदयम्। तथा हि, असावपि तस्या रत्नाभरणद्युतिमपि तिरोधानममंस्त,

हृदयप्रवेशमपि परिग्रहमगणयत्, भूषणरवमपि संभाषणममन्यत, सर्वेन्द्रियाहरणमपि प्रसादमचिन्तयत्, देहप्रभासंपर्कमपि सुरतसमागमसुखमकल्पयत् ।[1]

'चन्द्रापीड के सौन्दर्य को देखने पर कादम्बरी का हृदय कामदेव के बाण से विद्ध हो गया और उसके शरीर पर तत्तत् सात्त्विक भाव परिलक्षित होने लगे। लोगों को इन सात्त्विक भावों को देखकर कहीं चन्द्रापीड के प्रति कादम्बरी के आकर्षण का पता न लग जाय, इसलिए मुग्ध कादम्बरी की लज्जासुलभ स्थिति को छिपाकर कई उपकरणों ने उसकी सहायता की। देखने को तो ऐसा मालूम होता था कि कादम्बरी जैसी कोमलांगिनी को कुमार चन्द्रापीड का आदर करने में एकदम खड़े होने के श्रम के कारण पसीना हो आया है, पर पसीने (स्वेद) का सच्चा कारण कामदेव ही था, जिसने पुष्प के बाण से कादम्बरी का हृदय विद्ध कर स्वेद को उत्पन्न कर दिया था। चन्द्रापीड को देखकर रतिभाव के कारण कादम्बरी की जाघें काँपने लग गई थीं, उसकी चाल रुक-सी गई थी, पर कादम्बरी के मणिनूपुरों के झणत्कार को सुनकर पास आये हुए हंसों ने उसकी गति रोक ली थी, ऐसा समझ लिया गया। उसके श्वास के तेज चलने के कारण उपरिवस्त्र चञ्चल हो उठा, पर देखने वालों को असलियत का पता न लग सका, उन्होंने तो यह समझा कि चामर के द्वारा मन्दान्दोलित पवन से अंशुक चञ्चल हो रहा है। उसका हाथ एक दम वक्षःस्थल (हृदय) पर आ गिरा, मानो वह अपने हृदय में प्रविष्ट चन्द्रापीड का स्पर्श करने के लोभ के कारण उधर बढ़ रहा हो, वही हाथ पुरुष के प्रथम दर्शन से लज्जित कादम्बरी के स्तनों को ढँकने का बहाना बन गया। चन्द्रापीड के दर्शन से उत्पन्न आनन्द के कारण कादम्बरी के आँखों से आँसू ढूलक पड़े और इनका कारण कान में अवतंसित कुसुम का पराग बन गया। लज्जा के कारण उसके मुँह से कुछ भी शब्द न निकला, पर पद्मिनी कादम्बरी की मुखसुगन्ध के लोभ से मुँह के पास मँडराते भौरों ने ही उसे नहीं बोलने दिया, ऐसा मान लिया गया। कामदेव के बाण की पहली चोट को खाकर उसने सीत्कार किया, पर फूलों के समूह में पड़ी केतकी के काँटे के गड़ने से वह सीत्कार कर रही है, ऐसी साधारण धारणा बन गई। कम्प के कारण उसकी हथेली काँपने लगी, पर इस कम्प का बहाना किसी बात को निवेदित करने के

---

१. कादम्बरी (पूर्वभाग) पृ० ३९५–९६ ।

लिए उद्यत पास में खड़े प्रतिहारी का निवारण करना बन गया। जब चन्द्रापीड़विषयक कामदेव कादम्बरी के हृदय में प्रविष्ट हुआ ठीक उसी समय वैसा ही कामदेव चन्द्रापीड के हृदय में भी प्रविष्ट हुआ तथा कादम्बरी को देखकर वह भी आकृष्ट हो गया। चन्द्रापीड ने कादम्बरी के आभूषणरत्नों की प्रभा को ही छिपकर देखने का तिरोधान समझा, उसके हृदय में प्रवेश करने को ही आवासस्थान गिना, कादम्बरी के भूषण की आवाज को ही संभाषण माना, समस्त इन्द्रियों के आकर्षण को ही प्रसन्नता समझा और उसकी देहकान्ति के संपर्क को ही पाकर सुरतसमागमसुख की कल्पना की।'

इस उद्धरण में बाण ने एक साथ युवक नायक-नायिका ने परस्पर प्रथमदर्शन में उत्पन्न रागोद्‌बोध की स्थिति चित्रित की है। अनंग-कला से सर्वप्रथम परिचित मुग्धा नायिका की सलज्ज, सस्पृह भावना का जिस अपह्नुतिमय अलंकृत शैली में वर्णन किया गया है, वह बाण की पैनी पर्यवेक्षण शक्ति की परिचायक है। इसी प्रकार अन्तिम वाक्य में वर्णित चन्द्रापीड की उत्सुकता तथा कादम्बरी के दर्शन से उत्पन्न आनन्दावस्था का वर्णन अलंकृत होते हुए भी हृदय को उद्‌घाटित करता है। यद्यपि इन पंक्तियों में बाण ने अर्थालंकार की सहायता से भावों की व्यंजना कराई है पर अर्थालंकार की विनियोजना यहाँ कोरे अलंकारवैचित्र्य के लिए नहीं की गई है। वह भावपक्ष की उपस्कारक बनकर आती है। मुग्धा कादम्बरी की कुमारी-सुलभ लज्जा के कारण रागाविष्ट स्थिति को छिपाने के लिए बाण ने जिस अपह्नुति प्रणाली का प्रयोग किया है, वह कितनी कलापूर्ण है। नायक-नायिका के परस्पर प्रथम दर्शन का दूसरा चित्र हमें महाश्वेता और पुण्डरीक के प्रथम दर्शन में मिलता है। महाश्वेता को पुण्डरीक के दर्शन के बाद ऐसा प्रतीत होता है, 'जैसे उसकी सारी इन्द्रियाँ उसे पुण्डरीक के पास फेंक रही हों, जैसे उसका हृदय खींच कर उसे उसके सामने ले जा रहा हो, कामदेव पीछे से आगे ढकेल रहा हो और महाश्वेता बड़ी कठिनता से अपने आपको रोक पाती हो।'[१]

विप्रलम्भ शृङ्गार का करुण मार्मिक पक्ष हमें महाश्वेताविलाप[२] तथा

---

१. उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः, पुरस्तादाकृष्यमाणेव हृदयेन, पृष्ठतः प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वना कथमपि मुक्तप्रयत्नमात्मानमधारयम्।

कादम्बरी (पूर्वभाग) पृ० ३०५

२. कादम्बरी (पृ० ३५२–३५७)

कादम्बरी के विरहवर्णन[1] में उपलब्ध होता है। जरद्द्रविडधार्मिक के वर्णन[2] में हास्य का पुट भी पाया जाता है। स्त्रियों के सौन्दर्यवर्णन में बाण की तूलिका पटु है, चाण्डालकन्या, शूद्रक की स्नानक्रिया के समय में उपस्थित वारविलासिनियों, महारानी विलासवती, तांबूलकरंकवहिनी पत्रलेखा, तपःपूत महाश्वेता और गन्धर्वराजपुत्री कादम्बरी के रूपवर्णन में बाण की भावना और कल्पना राजोचित उदात्त गति से आगे बढ़ती है, शब्द संपत्ति, अलङ्कार-तति, स्वभावोक्ति और रस की बटालियन अपने आप सेवा में उपस्थित हो जाती है। काली-कलूटी चाण्डालकन्या का वर्णन जिस ढंग से किया गया है, वह सहृदय पाठक को चमत्कृत कर देता है और उसे सन्देह होता है कि यदि बाण की काल्पनिक चाण्डालकन्या सामने मूर्त-रूप में आकर खड़ी हो जाय, तो क्या वह 'मूर्च्छा के समान मनोहारिणी' (मूर्च्छामिव मनोहारिणीं) हो सकेगी ? बाण को दुःख तो इस बात का है कि 'वह चित्रगत सुन्दरी की भाँति (चण्डालकन्या होने के कारण) केवल दर्शन का ही विषय रह गई है, स्पर्श आलिङ्गनादि का नहीं, (आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्)।' बाण को उसके पतित जाति में जन्म लेने का ठीक उसी तरह खेद है जिस तरह भगवान् अग्नि को और भगवान् अग्नि तो आभरणप्रभा के व्याज से उसका जातिसंशोधन करने तक को तैयार हैं, क्योंकि वे सौन्दर्य के पक्षपाती हैं और बाण की तरह वे भी प्रजापति को चुनौती दे रहे हैं (आपिंजरेणोपसर्पिणां नूपुरमणीनां प्रभाजालेन रञ्जितशरीरया पावकेनेव भगवता रूप एव पक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणाकुर्वता जातिसंशोधनार्थमालिंगितदेहाम्) और सौन्दर्य के पक्षपाती बाण ने नीचकुलोत्पन्न चाण्डालकन्या की उपमा भवानी, लक्ष्मी तथा कात्यायनी से देने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई है।[3] काली चाण्डालपुत्री को भी बाण ने इस सलीके से सजा कर सामने रखा है कि वह संचारिणी 'इन्द्रनीलमणिपुत्रिका' (चलती-फिरती नीलम की बनी पुतली) दिखाई पड़ती है, उसके जघनस्थल पर रोमावलि के द्वारा वेष्टित करधनी सुशोभित है, जो मानो अनङ्गरूपी हाथी के शिर पर पहनाई हुई नक्षत्रमाला (२७ बड़े-बड़े मोतियों की माला) हो, वह शरद

१. कादम्बरी (पृ० ४४१–४४४)
२. कादम्बरी (पृ० ४६०–४६३)
३. . . . . 'रचितकिरातवेषामिव भवानीम्, ... 'प्रभाश्यामलितामिव श्रियम्, . . . 'महिषासुररुधिररक्तचरणमिव कात्यायनीम्।

ऋतु की तरह कमल के (समान) विकसित नेत्रों वाली है; वर्षा की तरह घने बालों वाली (बादलरूपी बालों वाली) है, मलयपर्वत की तटी की तरह चन्दनपल्लव के अवतंस से युक्त है और नक्षत्रमाला की तरह चित्रविचित्र कर्णाभूषणों से विभूषित है (चित्रा, श्रवण आदि नक्षत्रों से युक्त है)।[1]

महाश्वेता की तपःपूत मूर्ति का चित्रण करते समय तो बाण ने ऐसा समाँ बाँधा है कि जैसे वेदत्रयी स्वयं ही कलियुग के धर्मलोप से दुःखी होकर वनवासिनी बन गई हो (त्रयीमिव कलियुगध्वस्तधर्मशोकगृहीतवनवासाम्), जैसे मुनियों की ध्यानसम्पत्ति स्वयं मूर्तरूप में सामने आ खड़ी हो (देहवतीमिव मुनिजनध्यानसम्पदाम्), जैसे वह धर्म के हृदय से निकल कर आई हो (धर्महृदयादिव विनिर्गताम्)। काली चाण्डालकन्या से ठीक उलटे रूप-रंग वाली गौरवर्ण यथानाम्नी 'महाश्वेता' की गौर आकृति को उपस्थित करने में बाण ने एक से एक उत्कृष्ट कल्पना उपस्थित की है, जैसे उसे शंख से कुरेद दिया गया हो, जैसे वह मोतियों से निकाली गई हो, या फिर उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग मृणाल के द्वारा बनाये गये हों, अथवा चन्द्रमा की किरणों के ब्रुश से उसे साफ किया गया हो, चाँदी के घोल से मार्जन किया गया हो और जब सारी कल्पनायें समाप्त हो जाती हैं, पर बाण की भावना पूरी तरह स्फुट नहीं हो पाती, तो वह उसे धवलिमा की परमावधि—अन्तिम सीमा (ईयत्ता)—घोषित कर देता है।[2] महाश्वेता का वर्णन सहृदय पाठक के हृदय को चन्द्रापीड के मस्तक की तरह उस दिव्य तपस्विनी के आदर में झुका देता है, पर कादम्बरी का रूपवर्णन तो सहृदय को क्षण भर के लिए चन्द्रापीड की ही तरह अचल बना देता है।[3] कादम्बरी के नखशिख वर्णन में बाण ने सारी कल्पनाओं की गठरी खोल दी है, सारी रस-गगरी को उस अनिन्द्य सुन्दरी गन्धर्वकुमारी के

---

१. '......अनंगवारणशिरोनक्षत्रमालायमानेन रोमराजिलतालवालकेन रसनादाम्ना परिवृतजघनाम्,......शरदमिव विकसितपुण्डरीकलोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेशजालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्, नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्।

२. '......शंखादिवोत्कीर्णा, मुक्ताफलादिवाकृष्टाम्, मृणालैरिव विरचितावयवाम्, ...इन्दुकरकूर्चकैरिवाक्षालिताम्...... रजतद्रवेणेव निर्मृष्टां इयत्तामिव धवलिम्नः ......।' (कादम्बरी पृ० २८०)

३. ... कादम्बरीदर्शनविह्वलोऽचल इव तत्क्षणमराजत चन्द्रापीडः। (पृ० ३९५)

अभिषेक के लिए उड़ेल दिया है। कादम्बरी की वयःसंधिगत दशा के लिए बाण ने यह कल्पना की है जैसे यौवन के लक्षण प्रेम से युक्त होकर उसके समस्त अंगों में आकर प्रविष्ट हो गये हों, वह बालभाव को उसी तरह छोड़ रही हो जैसे अकृत पुण्य (स्वतः प्राप्त पुण्य) को छोड़ रही हो और यौवन कामदेव के आवेश के वशीभूत होकर कादम्बरी के माता-पित्रादि के (अनुमति) न देने पर भी उसका उपभोग करने के लिए उसे पकड़ रहा हो।[१]

स्त्रियों के नखशिख के व्यौरेवार वर्णन की तरह पुरुषों की आकृति के वर्णन में भी बाण दक्ष हैं। शूद्रक और चन्द्रापीड जैसे राजाओं की पुरुषोचित आकृति का वर्णन ही नहीं, जाबालि और जाबालिपुत्र हारीत तथा पुण्डरीक और कपिञ्जल के तपस्विजनोचित वर्णन में भी बाण ने गहरी सूझ का परिचय दिया है, और शबरसेनापति मातंग की भीषण आकृति तथा जरद्द्रविडधार्मिक के भय, जुगुप्सा और हास्य के मिश्रित भाव को उत्पन्न करनेवाले विचित्र रूप का वर्णन करने में भी बाण की लेखनी कम सफल नहीं है। इन वर्णनों को देखने से पता चलेगा कि बाण के कलाकार ने इनमें तीन शैलियों का प्रयोग किया है; पहले तो वह 'जाति' (स्वभावोक्ति) का आश्रय लेकर वर्ण्य व्यक्ति के रूप की सारी रेखाएँ स्पष्ट खींच देता है, फिर उपमा या उत्प्रेक्षा के द्वारा उन रेखाओं में रंग भरता है, वे उपमाएँ या उत्प्रेक्षाएँ एक ओर उस पात्र के प्रति बाण की भावना को व्यक्त करती हैं, दूसरी ओर पात्र के स्वभाव का भी मनोवैज्ञानिक परिचय देती हैं। जब शूद्रक के लिए बाण 'हर इव जितमन्मथः' कहता है, तो इसके द्वारा वह यह भी व्यञ्जना कराना चाहता है कि शूद्रक के हृदय के किसी प्राक्तन संस्कार के कारण स्त्री के प्रति आकर्षण नहीं उत्पन्न होता था।[२] उपमा के प्रयोग में वह कभी-कभी ऐसे श्लिष्ट साधारण धर्म चुनता है, जो बाहर से शब्दसाम्य को लेकर चलती शाब्दी क्रीडा जान पड़ते हैं, पर ध्यान से देखने पर अन्तः साम्य की भी व्यञ्जना कराते हैं। रेखाओं में रङ्ग भर देने के बाद वह कोरी चटक-मटक, बाहरी नक्काशी को पसन्द करने

---

१. ... लक्षणैरपि मन्मथावेशपरवशैनैव गृह्यमाणां यौवनेन ....।

(कादम्बरी पृ० ३८७)

२. मिलाइये—

तस्य ... च सुरतसुखस्योपरिद्वेष इवासीत्, सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे लावण्यवति .... हृदयहारिणी चावरोधजने (पृ० १३)

वालों के लिए चित्र पर कहीं-कहीं शाब्दीक्रीडा का सुनहरी पाउडर भी चिपका देता है और बाण के इन वर्णनों में यह सुनहरी पाउडर वर्णनों के अन्तिम अंश में दिखाई पड़ता है। सहृदय पाठक कभी-कभी इस सुनहरी चमक से ऊब भी जाता है, जो वर्णन के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते वर्ण्य विषय रेखाओं, रङ्गों और भावभंगिमाओं की रमणीयता को छिपा देती है। काश, बाण के इन वर्णनों में ये थिकलियां न होती। पूरा वर्णन कर चुकने पर वह श्लेष, विरोधाभास या परिसंख्या के चक्कर में जा फँसता है, तो सहृदय पाठक का माथा कुछ ठनक पड़ता है। पर फिर विचार आता है, बाण को पुराने पण्डितों के शब्द-क्रीडा-कुतूहल को भी तृप्त करना था। शूद्रक का पूरा वर्णन कर चुकने के बाद बाण परिसंख्या की शाब्दी क्रीडा का आश्रय लेते हैं। शूद्रक के राज्यों में केवल चित्रों में रङ्गों का मिश्रण (वर्णसंकर) था, क्योंकि उसके राज्य में धर्मविरुद्ध विवाह से उत्पन्न वर्णसंकर संतानें उत्पन्न नहीं होती थीं, छत्रों में ही कनकदण्ड (सोने के डंडियां) पाया जाता था, क्योंकि अपराध के न करने के कारण किसी को सुवर्णदण्ड नहीं देना पड़ता था, कोई व्यक्ति दुष्ट प्रकृति का न था, वक्रता (भङ्ग) केवल अन्तःपुर की रमणियों के केशकलाप में ही पाई जाती थी, और कोई व्यक्ति वाचाल नहीं था, वाचालता (मुखरता) केवल नूपुरों के झणत्कार के रूप में ही सुनाई देती थी।

'यस्मिश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकरा,.........छत्रेषु कनकदण्डाः.........न प्रजानामासन्। यस्य च......अन्तःपुरिकाकुन्तलेषु भंग नूपुरेषु मुखरता... अभूत्।'

हारीत तथा जाबालि के वर्णन में भी बाण ने वर्णन के अन्तिम भाग में विरोधाभास वाली शाब्दी क्रीडा उपस्थित की है, उन्हें हारीत 'सोया हुआ भी जगा दिखाई देता है (सुप्तोऽपि प्रबुद्धः); वास्तव में वह सुन्दर जटाओं (प्ता) वाला और ज्ञानशील है।' इसी तरह जाबालि के आश्रम के वर्णन में भी बाण ने परिसंख्या का प्रयोग किया है, जहाँ मलिनता केवल यज्ञधूमों की थी, चरित्र की नहीं; मेखलाबन्ध केवल यज्ञोपवीतादि व्रतों में होता था, कोई खण्डिता कृतापराध नायक को करधनी से नहीं बांधती थी; स्तनस्पर्श केवल होमधेनुओं का होता था, कामिनियों का नहीं; जहाँ पक्षियों का कोई भी वध नहीं करता

था, केवल महाभारत की कथा में शकुनि का वध होता था; कोई भी व्यक्ति वायु प्रकोप के रोग से पीडित न था, केवल पुराणों में वायुपुराण सुना जाता था, कोई भी ब्राह्मण (द्विज) अपने कर्तव्य से पतित नहीं होता था, केवल वृद्धावस्था के कारण दाँतों का पतन (द्विजपतनं) होता था, और उस तपोवन में कोई भी व्यक्ति गीत, नृत्य या भोगविलास का शौकीन न था, संगीत का व्यसन केवल हिरणों को था, नाचने का मोरों को और भोग (सर्पसरीर) केवल सर्पों के पास था।[1]

पर सुबन्धु की तरह बाण इन कलाबाजियों में सदा नहीं फँसते और पहले वे वर्ण्य विषय को पूरी ईमानदारी से वर्णित कर देते हैं, तब श्लेष की जटिल पगडंडी का आश्रय लेते हैं विन्ध्याटवी या अच्छोदसरोवर के वर्णन में भी कवि पहले वहाँ की भीषणता या रमणीयता को पूरा ब्योरे-वार उपस्थित करा देता है—भले ही अर्थालङ्कारों के द्वारा ही; और उसके बाद विन्ध्याटवी के वर्णन में **'क्रूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा'** जैसे विरोधाभास के प्रयोगों को उपस्थित करता है। प्रकृति के अलंकृत वर्णनों में बाण की कल्पना एक से एक रमणीय परिवेश का सहारा लेकर आती है। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि के प्रकृतिक वर्णन कल्पना के रङ्गों में निखर उठे हैं। सायङ्काल का यह वर्णन बाण के बेजोड़ प्रकृति-वर्णनों में से एक है।

'क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी हंसपातदुकूलपरिधाना मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसि पतिते दिवसकरे वेगोत्थितमम्भःसीकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्। अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्तसन्ध्यार्चनकुसुमशबलमिव तारकितं वियदराजत।

---

१. यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु। यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामेन द्विजपतनम्, एणकानां गीताश्रवणव्यसनम्; शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः। (पृ० ८९—९०)

क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वंविप्रकीर्णैः प्रणामांजलिसलिलैः क्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः ।'[1]

'तपोवनवासियों ने देखा कि दिनभर कहीं घूम-घामकर लाल तारों वाली रक्तिम सन्ध्या, लाल पुतलियों वाली कपिला तपोवनधेनु की तरह लौट आई है। कमलिनी अभी हाल में विदेश गये हुए सूर्य (नायक) के वियोग से दुःखी होकर कमल की बन्द कली के कमण्डलु को धारण करती हुई, हंसों के धौत वस्त्र को पहने, मृणाल श्वेत यज्ञोपवीत से सुशोभित होकर, भौरों के रुद्राक्ष का वलय पहनकर मानों सूर्य के पुनर्मिलन के लिए तपस्या कर रही थी। सूर्य के तेजी से पश्चिम-समुद्र में गिरने पर उछली हुई पानी की बूंदों की तरह आकाश ने तारागण को धारण किया। थोड़ी सी देर में सारे आकाश में तारे छिटक पड़े मानों सिद्धकन्याओं के द्वारा सन्ध्या पूजा के लिए प्रस्तुत पुष्प बिखेर दिये गये हों और क्षण भर में ही सारी सायंकालीन लालिमा इसी तरह लुप्त हो गई,. मानों सूर्यास्त के समय दिये हुए मुनियों के अर्घ्यदान के जल से उसे धो दिया गया हो।'

बाण के इस वर्णन में कोरा उपमा, समासोक्ति और उत्प्रेक्षा का चमत्कार नहीं है, बल्कि यहाँ सन्ध्या का विस्तृत वर्णन उपन्यस्त किया गया है। सूर्य के समुद्र में गिरने पर ऊपर उछले हुए छीटों के द्वारा बाण ने सायङ्काल के समय छुट-पुट दिखाई देते तारों का सङ्केत दिया है, और बाद में सिद्धांगनाओं के द्वारा विक्षित पुष्पाञ्जलि की कल्पना से समस्त आकाश में तारों के छिटक पड़ने का। इसके बाद जाकर सन्ध्या की ललाई समाप्त होती है। दूसरी विशेषता इस वर्णन में अप्रस्तुतों के चयन की है। कवि ने जाबालि के आश्रम में सन्ध्या का वर्णन करते समय आश्रम के जीवन से ही अप्रस्तुतों को चुना है। सन्ध्या के लिए तपोवन धेनु की उपमा कालिदास की कल्पना की याद दिला देती है।[2] और कमलिनी को वियुक्त नायिका बनाकर नायक के समागम के

---

१. कादम्बरी (पृ० १०५)

२. मिलाइये—

संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतंगस्य मुनेश्च धेनुः ॥

(रघुवंश, द्वितीय सर्ग)

लिए व्रत करती तपस्विनी बना देना, क्या 'नाटकीय पताका-स्थानक' या 'ड्रेमेटिक आइरनी' नहीं है, जिसके द्वारा कादम्बरी में महाश्वेता की वक्ष्यमाण दशा का सङ्केत कराना कवि को अभीष्ट है ?

रसप्रवणता, कलासौन्दर्य, वक्रोक्तिमय अभिव्यञ्जना प्रणाली, सानुप्रासिक समासान्त पदावली, दीपक, उपमा और स्वभावोक्ति की रुचिर योजना — जिसके बीच-बीच में श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्या को गूंथ दिया गया है — बाण की शैली की विशेषता है। बाण की कथा इतनी रसवती है कि वह स्वयं पदशय्या से समन्वित हो जाती है और उनकी उक्तियाँ कलामय तथा कोमल हैं, भावपक्ष (रस) तथा कलापक्ष (कलालापविलास) का यह विचित्र समन्वय देखकर सहृदय ठीक इसी तरह चमत्कृत हो जाता है, जैसे कलापूर्ण उक्ति का प्रयोग करने वाली कोमल नवोढा के स्वयं ही रस से परिपूर्ण होकर शय्या की ओर आने पर नायक का हृदय इसलिए चमत्कृत हो जाता है कि वह अद्भुत का समावेश कर देती है।[1] चाहे नवोढा नायिका खुद कभी भी रस के वशीभूत होकर शय्या पर न आती हो, पर उसका काल्पनिक रूप हमें बाण की रसवती कथा में मिलता है, जो मुग्धा सुलभ लज्जा को छोड़कर स्वयं नायक के पास उपस्थित हो जाती है। इसका खास कारण बाण का उदात्त कलपक्ष है। कालिदास की कविता पार्वती की तरह भाव से भरी रहती है, पर फिर भी बाहर से इतनी सलज्जा है कि वह सामने आने से झिझकती है, वस्त्र के छोर के पकड़े जाने पर जाना चाहती है (गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका) पर बाण की कविता तो महाश्वेता की तरह स्वयं रसमग्न होकर नायक के पास अभिसरण करने को उद्यत है और इसका एक मात्र श्रेय बाण की शैली को है, जो उस सुन्दर चम्पे की माला के समान है, जिसमें उज्ज्वल दीपक-से चमकते फूल गूंथे गये हों, जिसमें चम्पा के फूलों को घना अनुस्यूत किया गया हो, बीच-बीच में मालती की कलियाँ लगाई गई हों। बाण ने भी अपनी कथा में उज्ज्वल दीपक तथा उपमा अलङ्कारों से युक्त पदार्थों से कथा की योजना की है, बीच-बीच में श्लेष की सघन संघटना है और स्वभावोक्ति की रमणीयता से कथा में सरसता का संचार किया है। भला बताइये तो सही, ऐसी सुन्दर चम्पे

---

१. स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ (पद्य ८)

की माला और बाण की इतनी कलामय शैली किसका मन न हरेगी ?[१]

पर वेबर का मन अगर इस माला ने आकृष्ट न किया हो, तो इसमें माला का क्या दोष ? कहा जाता है, भौंरे चम्पा को पसन्द नहीं करते, पर एक कवि ने चम्पा के फूल से कहा था कि यदि मलिन हृदय वाले काले भौंरे ने उसका आदर न किया, तो उसे चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं, भगवान् करें 'कमलनयनी' रमणियों के भौंरे से भी अधिक काले बाल कुशल रहें, जो चम्पा के फूलों का आदर करेंगे।[२] वेबर ने बाण की शैली को उस सघन विन्ध्याटवी की तरह देखा था, जहाँ पद पद पर अप्रचलित क्लिष्ट शब्द, श्लिष्ट पद-योजना तथा समासान्त पदों एवं लम्बे-लम्बे वाक्यों के भीषण जन्तु आकर डराते हैं, और डॉ० डे को भी बाण तथा सुबन्धु की शैली में यदि कोई भेद दिखाई पड़ा था, तो केवल कविता की मात्रा का ही, गुण का नहीं। पर यह तो रुचिभेद है, जिस पर विवाद करना अनावश्यक है। बाण संस्कृत साहित्य का वह 'पञ्चानन' है,[३] जो काव्य की विन्ध्याटवी के हर मार्ग पर 'सिंह ध्वनि' से चलता है। अलंकृत समासान्त पदयुक्त वाक्यों की निरर्गल धारा में वह वर्षाकालीन सरिता को भी चुनौती देता है, तो रसमय छोटे-छोटे भावप्रवण वाक्यों में वह वैदर्भी के अपूर्व रूप की व्यञ्जना करता है। बाण की शैली गौडी नहीं है, वह कभी गौडी और कभी वैदर्भी के छोर छूता मध्यम मार्ग की 'पाञ्चाली' सरणि का आश्रय लेता है। बाण के बाद संस्कृत गद्य में उसकी नकल करने का प्रयत्न 'तिलकमञ्जरी'-कार धनपाल (११ वीं शती) ने किया, पर बाण की काव्य-रमणीयता उस सीमा तक पहुँच चुकी थी, जहाँ कोई न पहुँच सकता था, बाद में सभी गद्यलेखक ले-भगू निकले, उन्होंने बाण का ही उच्छिष्ट पाकर संतोष किया; बाण ने किसी क्षेत्र को नहीं छोड़ा था और सहृदय आलोचक ने सारे काव्य विषय, समस्त अभिव्यञ्जनापक्ष और भाव को बाण का उच्छिष्ट घोषित किया :—बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।

——

१. हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥ (पद्य ९)

२. यन्नादृतस्त्वमलिना मलिनाशयेन किन्तेन चम्पक ! विषादमुरीकरोषि।
विश्वाभिरामनवनीरदनीलवेशाः केशाः कुशेशयदृशां कुशली भवन्तु ॥

३. आसर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥